6436

तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । नवम्बर १९९३ । सप्तम अंक

1663-7

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १७ : अंक ७

नवम्बर १९९३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक मूल्य : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

हेमचन्द्राचार्य का शिष्य-मण्डल १९५

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २१३

संकलन २२१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या २२२

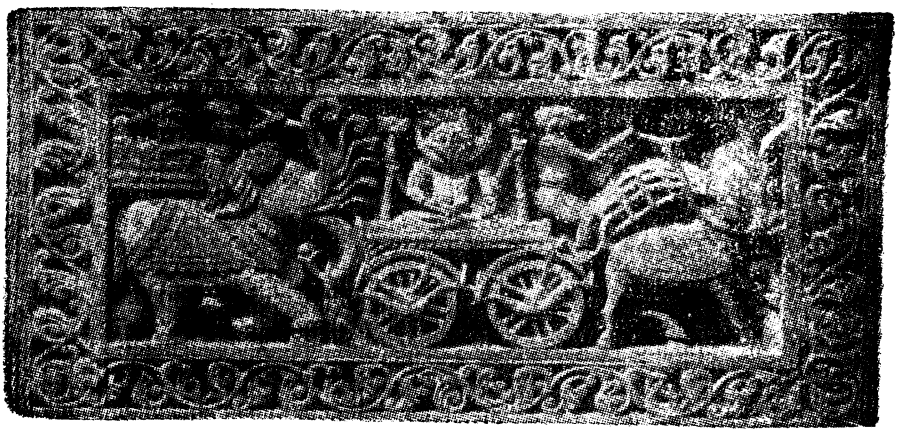

घर देरासर के दरवाजे पर बनी लकड़ी की कलाकृति
तीर्थंकर के दर्शनार्थ देवगण का आगमन

हेमचन्द्राचार्य का शिष्य-मण्डल

भोगीलाल सांडेसरा

'कलिकाल सर्वज्ञ' श्री हेमचन्द्राचार्य का युग गुजरात के इतिहास में सुवर्ण-युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल में गुर्जरों की सर्वांगीण उन्नति और प्रगति दृष्टिगोचर होती है। सिद्धराज और कुमारपाल के शासन काल में गुजरात के साम्राज्य का अभूतपूर्व विस्तार हुआ; विद्या, कला, वाणिज्य आदि सभी क्षेत्रों में गुजरात के निवासियों का विकास हुआ। इस समय हमें उस काल के स्थापत्य के बहुत थोड़े अवशेष दिखाई देते हैं किन्तु उन अवशेषों और प्राचीन ग्रन्थों के आधार से हम उस समय के प्रासादों और देव मन्दिरों की कल्पना कर सकते हैं। गुजरात के वाणिज्य से सम्बद्ध विदेशी यात्रियों के अनेक वर्णन मिलते हैं। इस समय समस्त हिन्द के वाणिज्य-व्यवसाय में गुजरातियों का जो स्थान है उसी से हम उस काल के वाणिज्य की कल्पना कर सकते हैं। उस समय की अहिंसा में सात्त्विक वृत्ति का पूर्ण योग था। जैन सिद्धान्त अनेक जैन मन्त्री, अमात्य, सेनापति, कुमारपाल जैसे परमार्हत राजा तथा विरक्त सन्यासी हेमचन्द्र को प्रवृत्ति से विमुक्त न कर सके।

भूतकाल पर दृष्टि डालें तो हमें मालूम होगा कि सिद्धराज-कुमारपाल के राज्यकाल में असाधारण दीप्ति थी। साथ ही यह मालूम पड़ता है कि मानो यह दीप्ति हेमचन्द्राचार्य के शान्त और प्रतिभायुक्त नेत्रों से प्रगट हो रही हो। इस दीप्ति में विद्या, संस्कारसम्पन्नता और सर्वधर्मसमभाव का अद्भुत तेज है। यह कहना अनुचित न होगा कि हेमचन्द्राचार्य ने समस्त देश की प्रजा का जीवन और उसकी विचारभूमिका को परिवर्तित कर दिया था। कुमारपाल-प्रतिबोध और तत्फलस्वरूप वधनिषेध की घोषणा की छाप आज भी गुजरात पर है, इसे कौन इन्कार कर सकता है?

भारत के इतिहास में हेमचन्द्र का साहित्याचार्य के रूप में अतुलनीय स्थान है। मालवा और गुजरात की राजकीय स्पर्धा में से सांस्कारिक स्पर्धा का जन्म हुआ और इस स्पर्धा के परिणामस्वरूप सिद्धराज की प्रार्थना पर हेमचन्द्र ने 'सिद्धहेम व्याकरण' का सर्जन किया। हेमचन्द्र की सर्वतोमुखी प्रतिभा केवल व्याकरण तक ही सीमित नहीं रही। 'अभिधान चिन्तामणि', 'अनेकार्थ संग्रह', 'निघंटुकोश', 'देशी नाममाला' जैसे शब्दकोश; 'सिद्धहैम', 'लिंगानुशासन', 'धातुपारायण' जैसे व्याकरण ग्रन्थ; 'काव्यानुशासन' जैसे 'अलंकारग्रन्थ', 'छन्दोनुशासन' जैसा छन्दशास्त्र, संस्कृत और प्राकृत

'द्वयाश्रय' जैसे काव्य, 'प्रमाण मीमांसा' और 'योगशास्त्र' जैसे गहन शास्त्रीय ग्रन्थ और 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' जैसे कवित्व युक्त महाकाव्य इत्यादि अनेक ग्रन्थों का सर्जन भी किया है। उनके ऐसे विद्वता पूर्ण लिखे हुए ग्रन्थों ने डॉ० पीटर्सन को आश्चर्य में डाल दिया और उन्होंने इनको "महोदधि" (Ocean of knowledge) के विशेषण से अलंकृत किया।

सोमप्रभसूरि ने 'शतार्थ काव्य' की टीका में लिखा है—

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्वयाश्रयी-
ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवम्
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥

जिन्होंने नया व्याकरण, नया छन्दशास्त्र, नया द्वयाश्रय, नया अलंकार-शास्त्र, नया तर्कशास्त्र और नये जीवन चरित्रों की रचना की है उन्होंने (हेमचन्द्र) किस प्रकार से मोह दूर नहीं किया है! अर्थात् किया है।

ऐसे प्रभावशाली पुरुष के आसपास शिष्यों का मण्डल होना स्वाभाविक ही है। ऐसे मनुष्य शिष्य-मण्डली के विस्तार के प्रति उदासीन ही रहते हैं। जैसे बहती हुई गंगा में जिसे प्यास हो वह चुल्लू से पानी पीता है अथवा घड़ा भरता है उसी प्रकार ज्ञान-पिपासु ही उनके आसपास एकत्रित होते थे। हेमचन्द्र ने शिष्यों की संख्या बढ़ाने का कभी प्रयत्न भी नहीं किया। उनके सभी शिष्य अच्छे विद्वान् और साहित्यकार थे, इससे उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है। उनके शिष्यों में रामचन्द्रसूरि की ख्याति सम्पूर्ण देश के विद्वानों में फैली हुई थी और उस समय के विद्वानों में हेमचन्द्र के बाद इन्हीं का नाम लिया जाता था। इनके अलावा गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, वर्धमानगणि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, यशश्चन्द्र, बालचन्द्र आदि दूसरे शिष्य थे। इन सभी ने किसी न किसी रूप में साहित्य की वृद्धि की है और जब भारतीय साहित्य में गुजरात की देन का विवेचन करते हैं तब इन सभी की साहित्य प्रवृत्ति पर अवश्य ध्यान आकर्षित होता है। हेमचन्द्र की अगाध विद्वता का उत्तराधिकार इन सब शिष्यों में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर इन सभी पर यथाशक्य प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

१ महाकवि रामचन्द्र

महाकवि रामचन्द्र की जाति, उनके देश, माता-पिता आदि के विषय में अभी तक कुछ भी पता नहीं चला है। उनके द्वारा रचित 'नलविलास नाटक'

के सम्पादक पं० लालचन्द्र गाँधी के मत से इनका जन्म सं० ११४५[1] में, दीक्षा सं० ११५० में, सूरिपद ११६६ में और सं० १२२९ में हेमचन्द्राचार्य के पट्टधर हुए। इनकी मृत्यु सं० १२३० में मानी जाती है।

रामचन्द्र हेमचन्द्राचार्य के षट्ट शिष्य होने का स्पष्ट अनुमान ऐतिहासिक साधनों से किया जा सकता है। 'प्रभावक चरित' के हेमाचार्य प्रबन्ध में एक ऐसे प्रसंग का वर्णन है, जिसमें सिद्धराज हेमचन्द्र से प्रश्न करते हैं कि आपके बाद इस स्थान को शोभित करनेवाला कौन-सा योग्य शिष्य आपकी दृष्टि में है? इसके उत्तर में हेमचन्द्र सिद्धराज से रामचन्द्र का परिचय कराते हैं और सिद्धराज रामचन्द्र को हेमचन्द्र जैसे महान् आचार्य के शिष्य को शोभा देने वाले 'एकदृष्टि' बनने की सलाह देता है।[2] जयसिंह सूरि रचित कुमारपाल

---

१ रामचन्द्र और गुणचन्द्र द्वारा रचित 'नाट्य दर्पण' (गा० ओ० सी०) के सम्पादक श्री गोन्देकर रामचन्द्र का जन्म सं० ११५६ में मानते हैं।

२ राज्ञा श्रीसिद्धराजेनान्यदाऽनुययुजे प्रभुः।
भवतां कोऽस्ति पट्टस्य योग्यः शिष्यो गुणाधिकः॥
तनस्माकं दर्शयत चित्तोत्कर्षाय मामिव।
अपुत्रमनुकम्पार्हं पूर्वे त्वां मा स्म शोचयन्॥
आह श्री हेमचन्द्रश्च न कोऽप्येवं हि चिन्तकः।
आद्योऽप्यभूदिलापालः सत्पात्राम्भोधिचन्द्रमाः॥
सज्ञानमहिमस्थैर्यं मुनीनां किं न जायते।
कल्पद्रुमगमे राज्ञि त्वयीदृशि कृतस्थितौ॥
अस्त्यामुष्यायणो रामचन्द्राख्यः कृतिशेखरः।
प्राप्तरेखः प्राप्तरूपः संघे विश्वकलानिधिः॥
अन्यदाऽदर्शयंस्तेऽमुं क्षितिपस्य स्तुतिं च सः।
अनुक्तामाद्यविद्वद्भिर्हल्लेखाधायिनीं व्यधात्॥
तथाहि—मात्रयाऽप्यधिकं कंचिन्न सहन्ते जिगीषवः।
इतीव त्वं धरानाथ धारानाथमपाकृथाः॥
शिरोधूननपूर्वं च भूपालोऽत्र दृशं दधौ।
रामे वामेतराचारौ विदुषां महिमस्पृशाम्॥
एकदृष्टिर्भवान् भूयाद वत्स जैनेन्द्रशासने।
महापुण्योऽयमाचार्यो यस्य त्वं पदरक्षकः॥
—प्रभावक चरित, हेमाचार्यप्रबन्धः, श्लोकः १२६-३७

चरित में लिखा है कि हेमचन्द्र के अवसान से कुमारपाल को जो शोक हुआ, उसका शमन रामचन्द्र ही करता है।

रामचन्द्र की लेखन प्रवृत्ति

रामचन्द्र ने रघुविलास, नलविलास, यदुविलास, सत्यहरिश्चन्द्र, निर्भय-भीमव्यायोग, मल्लिकामकरन्द प्रकरण, राघवाभ्युदय, रोहिणीमृगाङ्क प्रकरण, वनमाला नाटिका, कौमुदीमित्राणन्द और यादवाभ्युदय प्रभृति एकादश नाटक और 'सुधाकलश' नामक सुभाषितकोश की रचना की है। इनके अतिरिक्त अपने गुरुभ्राता गुणचन्द्र के साथ नाट्यशास्त्र का 'नाट्यदर्पण' और न्यायशास्त्र का 'द्रव्यालङ्कार' ग्रन्थ लिखे हैं। इन दोनों ग्रन्थों पर खुद ने वृत्ति भी लिखी है। 'कुमारविहार शतक' और 'युगादिदेव द्वात्रिंशिका' नामक काव्य भी इन्होंने लिखे हैं।

नाट्यशास्त्री रामचन्द्र

इनमें 'नाट्यदर्पण' अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि संस्कृत में नाट्यशास्त्र पर इने-गिने ग्रन्थ हैं। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। रामचन्द्र ने इसमें विविध विषयों को स्पष्ट करने के लिए भिन्न-भिन्न चवालीस नाटकों के उद्धरण उदाहरण के लिए उद्धृत किये हैं और उनका उल्लेख किया है। इनमें से कई नाटक इस समय अप्राप्य हैं। विशाखदत्त द्वारा रचित 'देवीचन्द्रगुप्त' नामक अप्राप्य नाटक के अनेक अवतरण 'नाट्यदर्पण' में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनसे मौर्यकाल के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। रामचन्द्र ने 'नाट्यदर्पण' में नाट्यशास्त्र, रसशास्त्र और अभिनयकला पर कुछ महत्वपूर्ण विषयों की चर्चा की है। और उस काल की दृष्टि से देखें तो वह चर्चा प्रणालिका भंजन के रूप में हमारे सामने आती है। पूर्वकाल के सभी अलंकार शास्त्री, जिनमें हेमचन्द्र भी सम्मिलित हैं, 'रस' को ब्रह्मानन्द के समान आनन्द देनेवाला मानते हैं; लेकिन रामचन्द्र ने 'सुखदुःखात्मको रसः' लिखकर रस को दो भागों—सुख और दुःख में विभक्त कर दिया है। उनका कहना है कि लोग कवि और अभिनेता के चातुर्य को देखने के लिए ही दुःखात्मक नाटक देखने जाते हैं। इससे यह फलित होता है कि नाटक केवल आनन्द प्राप्ति का ही साधन नहीं बल्कि उससे जीवन में स्थित करुणा का भी दर्शन होता है। रामचन्द्र ने पूर्वकालीन नाट्याचार्यों की एक और मान्यता का जोरों से विरोध किया है। प्राचीन नाट्याचार्यों का कहना है कि अभिनेता जिन संवेदनों और भावनाओं का अपने अभिनय द्वारा प्रदर्शन करता है, उनका वह स्वय अनुभव नहीं करता है। रामचन्द्र का कहना है कि जिन

भावनाओं का अभिनेता प्रेक्षकों के सामने प्रदर्शन करता है उनका अनुभव वह स्वयं भी करता है "जैसे वेश्या, दूसरों को प्रसन्न करते समय स्वयं भी आनन्द का अनुभव करती है"। इससे प्रतीत होता है कि रामचन्द्र का नाट्यशास्त्र का अभ्यास कितना तलस्पर्शी और मौलिक था। इन्हें लौकिक विषयों में अनेक नाटकों के प्रणेता के रूप में नाट्य और अभिनय के विविध अंगों का व्यावहारिक रूप से अवलोकन करने का खूब मौका मिला होगा, तो भी पूर्वकालीन परम्पराओं से आबद्ध युग में व्यावहारिक सत्यों के आधार से प्राप्त विधानों को विद्वानों के सामने प्रदर्शित करने का साहस करना यह कोई सामान्य बात नहीं थी।

प्रबन्धशतकर्तृ

रामचन्द्र को 'प्रबन्धशतकर्तृ' के नाम से भी पुकारा जाता है। स्वयं रामचन्द्र ने भी अपनी कृतियों में इस विशेषण का प्रयोग किया है।[३] पं० लालचन्द्र गाँधी की यह मान्यता है कि रामचन्द्र ने सौ प्रबन्ध अवश्य लिखे होंगे जिनमें से कई आजकल अप्राप्य हैं। दूसरा मत यह भी है कि 'प्रबन्धशत' शब्द प्रबन्धों की संख्या को सूचित नहीं करता अपितु इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा होगा। श्री जिनविजयजी ने अलंकार, काव्य, नाटक आदि विषयों के ग्रन्थों की एक प्राचीन सूची प्रकाशित की है।[४] ऐसा अनुमान होता है कि यह सूची किसी के पुस्तक संग्रह की होनी चाहिए। इसमें एक स्थान पर 'पं० रामचन्द्रकृतं प्रबंधशतं द्वादशरूपकनाटकादिस्वरूपज्ञापकं (श्लोक संख्या) ५०००' ऐसा उल्लेख है। श्री जिनविजयजी का यह मत है कि हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में जिन बारह वस्तुओं का रूपक के तौर से वर्णन किया है, उन रूपकों तथा नाटक आदि के स्वरूपों का इसमें विस्तृत और प्रामाणिक रूप से विवेचन किया होगा। इसके अनुसार ग्रन्थ ५००० श्लोकों में समाप्त होता है। केवल रूपकों की चर्चा में लिखा हुआ इतना विशाल ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है। धनंजय ने अपने 'दशरूपक' ग्रन्थ

---

३ श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रशिष्यस्य प्रबन्धशतकर्तुर्महाकवेरामचन्द्रस्य भूयांसः प्रबन्धाः—निर्भयभीमव्यायोग, प्रस्तावना।
श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्येण प्रबंधशतविधाननिष्णातबुद्धिना नाट्यलक्षणनिर्माणपातावगाढसाहित्यांभोधिना विशीर्णकाव्यनिर्माणतन्द्रेण श्रीमता रामचन्द्रेण विरचितं···द्वितीयं रूपकम्—कौमुदीमित्रानंद, प्रस्तावना।

४ 'पुरातत्त्व' (त्रैमासिक), पु० २, पृ० ४२१

में बारह रूपकों का वर्णन किया है। बारह रूपकों का रामचन्द्र द्वारा रचित ग्रन्थ अगर प्राप्त हो जाय तो उससे इस विषय में नया और विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। उपरोक्त प्रमाण से यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि 'प्रबंधशत' शब्द ग्रन्थों का संख्यावाचक शब्द नहीं है। बल्कि इसी नाम का कोई विशिष्ट ग्रन्थ होना चाहिए। 'कौमुदीमित्राणन्द' और 'निर्भयभीमव्यायोग' ग्रंथों की प्रस्तावना में रामचन्द्र स्वयं ही 'प्रबंधशत' लिखने का उल्लेख करते हैं, इससे प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों ग्रंथों के पहले उन्होंने सौ ग्रंथ लिख लिए होंगे इसकी अपेक्षा यह मानना अधिक युक्तिसंगत होगा कि उन्होंने सौ ग्रंथ नहीं बल्कि 'प्रबंधशत' नाम का कोई ग्रंथ लिखा होगा।

रामचन्द्र वैदर्भी रीति के पोषक थे। 'नलविलास' की यह—'वैदर्भी यदि बद्धयौवनभरा प्रीत्या सरत्याऽपि किम्,' श्लिष्ट उक्ति उसके प्रति उनके प्रेम की परिचायक है। यह रीति उनके सभी नाटकों में दृष्टिगोचर होती है।

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः ॥

वैदर्भी रीति के इन गुणों का रामचन्द्र की कृतियों में व्यवस्थित विकास दृष्टिगोचर होता है। 'नलविलास' में नाटक के प्राण स्वरूप विविध रसों का उत्कृष्ट कोटि का वर्णन करने का रामचन्द्र ने गर्व पूर्वक दावा किया है। यह दावा गलत भी नहीं है। श्री रामनारायण पाठक का कथन है कि 'शार्दूल-विक्रिडित आदि लम्बे वृत्तों की रचना में अन्यत्र रामचन्द्र पर भवभूति का प्रभाव प्रतीत होता है। ऐसा होते हुए भी सरलता, प्रसाद और माधुर्य उनके मुख्य गुण थे, इसे इन्कार नहीं किया जा सकता।'[५]

रामचन्द्र ने धार्मिक की अपेक्षा लौकिक साहित्य का अधिक सर्जन किया है। उनके कई नाटकों का कथानक लोककथाओं पर आधारित है। उस काल में रामचन्द्र रचित नाटकों का अभिनय होता होगा और विषय तथा भाषा की सरलता, रचना की प्रवाहिकता और प्रशंसनीय रसनिष्पत्ति के कारण विशेष रूप से लोकप्रिय हुए होंगे। 'नलविलास' नाटक में लेखक ने मूल कथानक के कुछ चमत्कारिक प्रसंगों का उल्लेख नहीं किया है। इससे प्रतीत होता है कि यह नाटक रंगमंच पर अभिनय करने के लिए लिखा गया होगा।

---

५ 'जैन साहित्य संशोधक' खण्ड ३, अंक २ में 'नल विलास' नाटक पर श्री रामनारायण पाठक का लेख।

रामचन्द्र समग्र साहित्य के ज्ञाता थे। वे शब्दशास्त्र, न्यायशास्त्र और काव्यशास्त्र के ज्ञाता—'त्रैविद्यवेदी' होते हुए भी कवित्व की स्पृहा करते थे। नाट्यदर्पण के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा है—

प्राणाः कवित्वं विद्यानां लावण्यमिव योषिताम्।
त्रैविद्यवदिनोऽप्यस्मै ततो नित्यं कृतस्पृहाः॥

'नाट्यदर्पण' में उन्होंने चवालीस नाटकों—जिनमें उनके ग्यारह नाटक भी सम्मिलित हैं, के उदाहरण दिये हैं। इससे उनके विशाल अध्ययन की कल्पना की जा सकती है। नाट्यशास्त्र और प्रमाणशास्त्र के प्रगाढ़ विद्वान् होने का प्रमाण तो उनके ग्रन्थ ही हैं।

केवल हेमचन्द्र के शिष्यों में ही नहीं बल्कि समकालीन विद्वानों में भी रामचन्द्र की साहित्यप्रवृत्ति सबसे विशाल और विविध है। गुजरात में लिखे हुए बावीस संस्कृत नाटकों में से आधे तो रामचन्द्र ने ही लिखे हैं। गुजरात और भारत के संस्कृत साहित्य में उनकी देन जितनी विविध है उतनी संगीन भी है।

रामचन्द्र के ग्रन्थों में से नाट्यदर्पण, सत्य हरिश्चन्द्र, निर्भयभीमव्यायोग, कौमिदीमित्रानंद और नलविलास प्रकाशित हो चुके हैं। सत्य हरिश्चन्द्र का १९१३ में इटालियन भाषा में भी अनुवाद हो गया है।

रामचन्द्र की समस्यापूर्ति

रामचन्द्र की समस्यापूर्ति की शक्ति भी प्रखर थी। वे प्राचीन कवियों को अत्यन्त प्रिय ऐसे शीघ्र कवित्व में भी निष्णात थे।

उनके आशु कवि होने के कारण सिद्धराज ने प्रसन्न होकर उन्हें 'कवि-कटारमल्ल' की उपाधि दी थी। इस विषय में 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के रचयिता ने लिखा है कि एक बार ग्रीष्म ऋतु में जब सिद्धराज अपने साथियों के साथ क्रीड़ोद्यान में जा रहे थे उस समय रामचन्द्र उनको सामने मिले। उस समय सिद्धराज ने कवि से प्रश्न किया कि 'कथं ग्रीष्मे दिवसा गुरुतरा' (ग्रीष्म ऋतु में दिवस बड़े क्यों होते हैं?) कवि ने उसी समय उत्तर दिया—

देव श्रीगिरिदुर्गमल्ल भवतो दिग्जैत्रयात्रोत्सवे
धावद्वीरतुरङ्गनिष्ठुरखुरक्षुण्णक्षपामण्डलात्।
वातोद्धूतरजोमिलत्सुरसरित्सञ्जातपङ्कस्थली-
दूर्वाचुम्बनचञ्चुरा रविहयास्तेनैव वृद्धं दिनम्॥

अर्थात्—हे गिरिदुर्गविजयी देव ! आप की दिग्विजययात्रा के महोत्सव में दौड़ते हुए घोड़ों के कठोर खुरों से पृथ्वी की रज पवन के जोर से आकाश गंगा में मिल गई है, उससे वहाँ जो कीचड़ हुआ उसमें दूब उग गई है। सूर्य के अश्व उस दूब को चरते हुए धीरे-धीरे चल रहे हैं, इसलिए दिवस लम्बा हो गया है।[१]

यही प्रसंग रत्नमंदिरगणिकृत 'उपदेश तरंगिनी' में भी प्राप्त होता है। उसमें लिखा है कि कवि के इस चातुर्य से प्रसन्न होकर सिद्धराज ने उनको 'कविकटारमल्ल' की पदवी दी थी।

दूसरे एक स्थान पर 'प्रबन्धचिन्तामणि' के कर्ता एक और विशेष बात लिखते हैं। एक समय काशी निवासी विश्वेश्वर पंडित कुमारपाल की सभा में आये और उन्होंने हेमचन्द्र को वहाँ उपस्थित देखकर एक पंक्ति कही—

पातु वो हेमगोपालः कम्बलं दण्डमुद्वहन्।

दण्ड और कंबल धारण करने वाले हेमगोपाल तुम्हारी रक्षा करें।

तुरन्त ही रामचन्द्र ने दूसरी पंक्ति की रचना की—

षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैनगोचरे।[२]

जो कि षड्दर्शन रूपी पशुओं को जैनगोचर में चराते हैं।

इनके अतिरिक्त भी कई अन्य ग्रन्थों में भी रामचन्द्र की समस्या पूर्तियाँ मिलती हैं। अगर वे सारी रामचन्द्र की न हो तो भी वे एक विद्वान और कवि के रूप में रामचन्द्र की प्रतिष्ठा की परम्परा की द्योतक हैं।

रामचन्द्र का स्वातंत्र्य प्रेम

उनकी कृतियों से यह अनुमान होता है कि उनका स्वभाव स्वातंत्र्य प्रेमी और मानी था। 'नाट्यदर्पण' में प्रतिपादित रस और अभिनय संबंधी नूतन विधान रामचन्द्र की स्वतन्त्र विचार शक्ति और परंपरागत विचारों को प्रमाण नहीं मानने की बुद्धिजन्य मनस्विता को प्रकट करते हैं। उनकी रचनाओं में जगह-जगह जो अहंभाव टपकता है वह उनके स्वतन्त्र और मानी स्वभाव का ही परिणाम हो सकता है। उन्होंने स्वयं ही अपने लिए 'विद्यात्रयीचण',

---

[१] प्रबन्धचिन्तामणि (फा॰ गु॰ सभा की आवृत्ति), पृ॰ १०२

[२] वही, पृ॰ १४५

'अचुम्बित-काव्यतंद्र'[8] और विशीर्णकाव्यनिर्माणतंद्र[9] जैसे विशेषणों का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर आत्मप्रशंसा सूचक उक्तियाँ भी लिखी हैं—

कविः काव्ये रामः सरसवचसामेकवसतिः।

—नलविलास, श्लोक २

ऋते रामान्नान्यः किमुत परकोटी घटयितुं
रसान् नाट्यप्रणान् पटुरिति वितर्को मनसि मे।

—नलविलास, श्लोक ३

साहित्योपनिषद्विदः स तु रसः रामस्य वाचां परः।

—सत्य हरिश्चन्द्र, श्लोक ३

प्रबन्धा इक्षुवत् प्रायो हीयमानरसाः क्रमात्।
कृतिस्तु रामचन्द्रस्य सर्वा स्वादु पुरः पुरः॥

—कौमुदी मित्रानन्द, श्लोक ४

स्वातंत्र्यप्रेम, कवि रामचन्द्र का विशिष्ट और अप्रतिम लक्षण है। उनकी उद्दाम भावनाएँ आज भी नवीन ही प्रतीत होती हैं। अपनी रचनाओं में भी उन्होंने स्वतंत्रता और मौलिकता लाने का भरसक प्रयत्न किया है। साहित्य की चोरी करने वालों और परकीय विचारों को लेनेवालों के प्रति समय-समय पर व्यंग बाणों का प्रहार किया है।[10] श्रीपाल की सहस्रलिंग सरोवर प्रशस्तिवाले प्रसंग (जिसके विषय में आगे लिखा जायगा) से प्रतीत होता है कि कवि जीवन में स्वतंत्र और स्पष्ट वक्ता था। स्वातंत्र्यप्रेम से उद्भूत उनकी कुछ सूक्तियों का नमूना तो देखिये—

स्वातंत्र्यं यदि जीवितावधि मुधा स्वर्भूर्भुवो वैभवम्।

—नलविलास, २-२

---

[8] पञ्चप्रबन्धमिषपञ्चमुखानकेन विद्वन्मनःसदसि नृत्यति यस्य कीर्तिः।
विद्यात्रयीचणमचुम्बितकाव्यतन्द्रं कस्तं न वेद सुकृती किल रामचन्द्रम्॥
—रघुविलास, प्रस्तावना

[9] देखो टिप्पणी नं० ३

[10] देखो 'नाट्यदर्पण' विवृत्ति के अंत में 'परोपनीतशब्दार्थ०' और 'अकवित्वं परस्तावत्' श्लोक। कौमुदीमित्राणन्द की प्रस्तावना में इन्हीं में से पहले श्लोक की पुनरुक्ति और जिनस्तोत्र में 'विद्वानपि यथा हास्यः परकाव्यैः कविर्भवन्।' इत्यादि

न स्वतन्त्रो व्यथां वेत्ति परतन्त्रस्यं देहिनः ।

—नलविलास, ६-७

अजातगणनाः समाः परमतः स्वतन्त्रो भवः ।

—नलविलास, अंतिमभाग

जिनस्तवषोडशिका के आरम्भ में अर्हत् को 'स्वातंत्र्यश्रीपवित्राय' कहकर के रामचन्द्र ने नमस्कार किया है और जिनस्तोत्र के अन्त में कहते हैं—

स्वतन्त्रो देव भूयास सारमेयोऽपि वर्त्मनि ।
मा स्म भूवं परायत्तः त्रिलोकस्यापि नायकः ॥

'सत्य हरिश्चन्द्र' की प्रस्तावना में रामचन्द्र गर्भितरूप से अपने आनन्द के साधनों का वर्णन करते हैं, उससे उनके मुक्त मानस की कल्पना की जा सकती है—

सूक्तयो रामचन्द्रस्य वसन्तः कलगीतयः ।
स्वातन्त्र्यभिष्टयोगश्च पञ्चैते हर्षवृष्टयः ॥

रामचन्द्र का नेत्रनाश

प्रबन्धों से प्रकट होता है कि उनकी दायीं आँख नहीं थी। प्रबन्धकार इसके लिए चमत्कारिक कारण उपस्थित करते हैं। प्रभावक चरित में लिखा है कि हेमचन्द्राचार्य ने जब रामचन्द्र का सिद्धराज के साथ परिचय करवाया तब सिद्धराज ने रामचन्द्रको जिन शासन में 'एक दृष्टि' होने का इशारा किया था, इसी से उनकी दायीं आँख उसी समय ज्योतिहीन हो गई।[११] प्रबन्ध चिन्तामणि के कर्त्ता का कहना है कि जब श्रीपाल कवि द्वारा विरचित सहस्रलिंग सरोवर प्रशस्ति पत्थर पर चित्रित की गई उस समय सभी विद्वानों को उस प्रशस्ति को देखने के लिए आमंत्रित किया गया था। श्री हेमचन्द्र ने रामचन्द्र को इस सूचना के साथ कि 'अगर सभी विद्वान् प्रशस्ति काव्य की प्रशंसा करें तो हमें टीका करने की आवश्यकता नहीं है' उस सम्मेलन में भेजा। प्रशस्ति में राजा की ममता और श्रीपाल कवि के प्रति सौजन्यता के कारण सभी विद्वान् कहने लगे कि सभी श्लोक बराबर हैं और उसमें 'कोशेनापि युतं दलैरुपचितं' श्लोक सुन्दर है। सिद्धराज ने जब रामचन्द्र से पूछा तो उन्होंने कहा "यह कुछ विचारणीय है"। और 'कोशेनापि' वाले काव्य में व्याकरण के दोषों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया।

[११] प्रभावक चरित, हेमाचार्य प्रबन्ध, श्लोक १३०-१४०

इस समय सिद्धराज की नजर लगने से (सिद्धराजस्य सञ्जातदृष्टिदोषेण) लौटते समय उपाश्रय में प्रवेश करते वक्त रामचन्द्र की एक आँख फूट गई।[१२]

इन कथाओं से सामान्य ऐतिहासिक तथ्यों को चमत्कारिक स्वरूप में ढालने का प्रबन्धकारों का कलाकौशल्य प्रतीत होता है। रामचन्द्र की एक आँख जन्म से अथवा बाल्यकाल से ही दैववशात् गई होगी। 'व्यतिरेकद्वात्रिंशिका' के अन्त के उनके एक श्लोक से यह अनुमान किया जा सकता है—

जगति पूर्वविधेर्विनियोगजं विधिनतान्ध्य-गलत्तनुताऽऽदिकम्।
सकलमेव विलुम्पति यः क्षणादभिनवः शिवसृष्टिकरः सताम्॥

दूसरे कितने ही स्तोत्रों में भी रामचन्द्र ने दृष्टिदान के लिए प्रार्थना की है।[१३]

रामचन्द्र की मृत्यु

राजा कुमारपाल की मृत्यु के पश्चात् उनका भतीजा अजयपाल उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासनारूढ़ हुआ। उन्होंने जैनों का दमन आरम्भ किया और अपने पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा निर्मित्त अनेक जैन प्रासादों का ध्वंस कर दिया। पुराने द्वेष के कारण रामचन्द्र की मृत्यु का भी वही कारण बना।

इस विषय में भिन्न-भिन्न ग्रंथों में आंशिक फेर-बदल के अतिरिक्त एक ही प्रकार की घटना का उल्लेख है। राजशेखरसूरि ने 'प्रबन्धकोश' में इस द्वेष का कारण और परिणाम वर्णन करते हुए लिखा है कि राजा कुमारपाल और हेमचन्द्र जब वृद्ध हो गये थे उस समय हेमचन्द्र की शिष्यमण्डली दो भागों में विभक्त हो गई। एक ओर रामचन्द्र-गुणचन्द्र आदि और दूसरी तरफ बालचन्द्र। बालचन्द्र की अजयपाल से मित्रता थी। एक बार रात्रि में मंत्री आभड और हेमचन्द्र के बीच कुमारपाल के उत्तराधिकारी के विषय में सलाह मशविरा चल रहा था। हेमचन्द्र ने कहा—"गद्दी तो प्रतापमल्ल को ही मिलनी चाहिए। अजयपाल तुम्हारे द्वारा स्थापित धर्म का नाश

---

१२ प्रबन्ध चिन्तामणि (फा० गु० सभा की आवृत्ति), पृ० १०१-३

१३ नेमे निधेहि निशितासिलताभिराम-चन्द्रावदातमहतं मयि देहि दृष्टिम्।
—नेमिस्तव, अन्तिम भाग

शकस्तुताङ्घ्रिसरसीरुह दुःस्थशार्थे देव प्रसीद करुणां कुरु देहि दृष्टिम्।
—षोडशिका, अन्तिम भाग

करेगा।" आम्रभट ने कहा "जैसा भी हो, अपना ही वही अच्छा है।" बालचन्द्र ने इसको सुन लिया और अजयपाल को कह दिया। इससे अजयपाल को रामचन्द्र आदि पर द्वेष हुआ। "हेमचन्द्र की मृत्यु के बत्तीस दिन पश्चात् कुमारपाल की मृत्यु अजयपाल द्वारा दिए गए विष से हो गई। हेमचन्द्र के प्रति जो बैर था उसका बदला अजयपाल ने रामचन्द्र से लिया और उसे तप्त लोहे के आसन पर बैठाकर उसके प्राण ले लिये।[१४] यही घटना मेरुतुंग के 'प्रबन्ध चिन्तामणि',[१५] जयसिंहसूरि विरचित 'कुमारपाल चरित' और जिनमण्डन गणि विरचित 'कुमारपाल' प्रबन्ध में भी मिलती है।

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के एक प्रबन्ध में रामचन्द्र की मृत्यु के विषय में एक दूसरी घटना का वर्णन है कि, 'हेमसूरि के रामचन्द्र और बालचन्द्र शिष्य थे। गुरु ने रामचन्द्र को सुशिष्य समझ कर विशेष विद्या और मान दिया। इससे क्रुद्ध होकर बालचन्द्र चला गया। अजयपाल की उससे मित्रता हुई। अजयपाल ने राज्य प्राप्ति के बाद रामचन्द्र से कहा—'हेमचन्द्रसूरि की सारी विद्या मेरे मित्र बालचन्द्र को दे।' रामचन्द्र ने उत्तर दिया—'गुरु की विद्या कुपात्र को नहीं दी जाती।' राजा ने कहा—'तो अग्नि.......[१६]' जीभ कड़ी करके उसके ऊपर (तप्त पत्र ?) बैठते हुए उन्होंने दोधक पंचशती (अर्थात् पाँच सौ दोहे ?) की रचना की।"[१७]

---

१४ प्रबन्धकोष (सिंघी जैन ग्रंथमाला), पृ० १८

१५ प्रबन्ध चिन्तामणि (फा० गु० सभा की आवृत्ति पृ० १४५) में लिखा है कि रामचन्द्र को ताम्रासन पर बैठा कर मारने का यत्न किया गया था लेकिन उन्होंने निम्न दोहा बोलकर जिह्वा को कड़ी करके मृत्यु को प्राप्त किया—

महि वीढह सचराचरह जिण सिरि दिन्हा पाय।
तसु अत्थमणु दिणेसरह होउत होहि चिराय॥

[इस सचराचर पृथ्वी पर जिसने पैर रक्खा है ऐसा दिनेश्वर सूर्य अस्त होता है। जो होने को होता है वह चिरकाल के बाद भी होता है।]

'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' के एक प्रबन्ध (पृ० ४७) के अनुसार हेमचन्द्र के अवसान के बाद श्री संघ के शोक का शमन करने के लिए रामचन्द्र ने यह दोहा कहा था।

१६ इस स्थान पर मूल प्रति में कुछ भाग लुप्त हो जाने से वाक्य टूटता है।

१७ पुरातन प्रबन्ध संग्रह (सिंघी जैन ग्रंथमाला), पृ० ४६

उपरोक्त उदाहरणों से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है और यह ऐतिहासिक सत्य भी है कि हेमचन्द्र के शिष्य मण्डल से बालचन्द्र अलग हुए और रामचन्द्र की मृत्यु में भी वे ही कारण भूत हुए।

अजयपाल के जैनमंत्री यशःपाल ('मोहराजपराजय' के कर्ता) तथा आभड़ आदि सेठों ने रामचन्द्र सूरि की इस प्रकार होने वाली मृत्यु को रोकने का भरसक प्रयास किया था लेकिन उनके सब प्रयत्न निष्फल हुए।[१८]

२ गुणचन्द्र

रामचन्द्र के गुरुभाई और उनकी साहित्य प्रवृत्तियों में अनेक प्रकार से सहायक गुणचन्द्र के विषय में नहीं के बराबर सामग्री उपलब्ध होती है। इस लिए प्राप्त साधनों द्वारा अनुमान ही किया जा सकता है। अभी तक गुणचन्द्र द्वारा लिखित एक भी स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं मिला है। नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ 'नाट्यदर्पण' और प्रमाणशास्त्र के ग्रन्थ 'द्रव्यालंकार' को लिखने में रामचन्द्र की गुणचन्द ने सहायता की थी। इन दोनों ग्रन्थों पर लिखी हुए वृत्तियाँ भी इन दोनों ने साथ बैठ कर लिखी है।

यह सहज में ही अनुमान हो सकता है कि रामचन्द्र और गुणचन्द्र के स्वभाव में एक प्रकार की भिन्नता थी। दोनों प्रखर विद्वान् तो थे ही लेकिन रामचन्द्र के ग्यारह नाटक, उनका हलका लोक भोग्य कथानक, बारबार उनमें आने वाले व्यंग और हास्यजनक वाक्य, सामाजिक और सांसारिक चित्र, मधुर विशद और आनन्ददायक सूक्तियाँ, उनका उद्दाम स्वातन्त्र्य प्रेम आदि प्रकट करते हैं कि रामचन्द्र की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी; उनकी मानसिक बनावट गम्भीरता परायण नहीं बल्कि उल्लासमय थी; सामान्य वस्तुओं में गहरा रस लेकर उनमें सौन्दर्य पहिचानने की उच्च साहित्यकारों के सदृश शक्ति उनके मस्तिष्क में भरी हुई थी। दूसरी ओर गुणचन्द्र के विषय में यह कहा जा सकता है कि वे विद्वान् थे, सर्जक और साहित्यकार नहीं। उन्होंने रामचन्द्र को नाटक, सुभाषित कोश आदि साधारण साहित्य लिखने में योग नहीं दिया,

---

[१८] रामचन्द्र के विषय में इस निबन्ध में उसके अप्रसिद्ध ग्रन्थों में से जो अवतरण आदि लिए गये हैं, वे पं० लालचन्द्र गाँधी द्वारा लिखित नलविलास नाटक की संस्कृत प्रस्तावना में से उद्धृत किये हैं, उसके लिये आभार प्रकट करता हूँ।

लेकिन 'नाट्यदर्पण' और 'द्रव्यालंकारवृत्ति' जैसे गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ तैयार करने में दोनों ने साथ-साथ कार्य किया।

जैसलमेर भण्डार की 'द्रव्यालंकारवृत्ति' की ताडपत्रीय प्रति स० १२०२ में लिखी हुई है इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ उसके पहले की रचना होनी चाहिए।[१९]

'शतार्थी काव्य' के कर्त्ता सोमप्रभसूरि ने स० १२४१ में पाटन में, कुमारपाल को हेमचन्द्र द्वारा दिए गए उपदेश पर 'कुमारपालप्रतिबोध' नामक विशाल ग्रन्थ की प्राकृत भाषा में रचना की थी। हेमचन्द्र के तीन शिष्य गुणचन्द्र, महेन्द्रमुनि और वर्धमानगणि ने उस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा था। ऐसा उल्लेख उसकी प्रशस्ति में मिलता है।[२०]

३ महेन्द्रसूरि

हेमचन्द्र ने संस्कृत भाषा में चार कोश लिखे हैं—शब्दों का पर्यायवाची 'अभिधान चिन्तामणि', वनस्पतिशास्त्र और वैद्यक शब्दों का 'निघंटुकोश', देशी शब्दों की 'देशी नाममाला' और एक ही शब्द के अनेक अर्थों को बतानेवाला 'अनेकार्थ संग्रह'। इनमें से प्रथम दो कोशों की क्रमशः दस हजार और तीन हजार श्लोकों की विस्तृत टीकाएँ उन्होंने स्वयं लिखी हैं। यह अनुमान किया जा सकता है कि 'अभिधान चिन्तामणि' की टीका हेमचन्द्र की अन्तिम कृति होगी, क्योंकि 'योगशास्त्र' और 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' विषयक उल्लेख उसमें प्राप्त होते हैं। 'अनेकार्थ संग्रह' की टीका लिखने की हेमचन्द्र की योजना होनी चाहिए। लेकिन इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने के पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। इसीलिए उनके शिष्य महेन्द्रसूरि ने अपने गुरु द्वारा जो कुछ भी इसके विषय में सुना था उसके आधार पर 'अनेकार्थ कैरवाकर कौमुदी' नामक टीका की रचना अपने गुरु के नाम से लिखी।[२१] हेमचन्द्राचार्य

---

१९ जैसलमेर भण्डार की सूची (गा० ओ० सी०), पृ० ११

२० श्री हेमसूरिपदपङ्कजहंसैः श्रीमहेन्द्रमुनिपैः श्रुतमेतत्।
वर्द्धमानगुणचन्द्रगणिभ्यां साकमाकलितशास्त्ररहस्यैः॥
—कुमारपाल प्रतिबोध (गा० ओ० सी०), पृ० ४७८

२१ श्री हेमचन्द्रशिष्येण श्रीमन्महेन्द्रसूरिणा।
भक्तिनिष्ठेन टीकैव तन्नाम्नैव प्रतिष्ठिता॥

का स्वर्गवास सं० १२२९ में हुआ। यह टीका उनकी मृत्यु के थोड़े समय बाद ही लिखी गई होगी, ऐसा अनुमान होता है।

४ वर्धमान गणि

कुमारपाल द्वारा निर्मित 'कुमारविहार' की प्रशस्ति रूप कुमारविहार प्रशस्ति काव्य पर व्याख्या लिख कर वर्धमानगणि ने इस काव्य के १२६ अर्थ निकाले हैं। इस व्याख्या के अर्थ में इन्होंने लिखा है कि पहले इस काव्य के छः अर्थ किये गये थे लेकिन मैंने कुतूहलवश इसके ११६ अर्थ किये हैं।[२१] यह व्याख्या वर्धमान गणि के अद्भुत पाण्डित्य पर प्रकाश डालती है।

देवचन्द्र

हेमचन्द्र के गुरु का नाम भी देवचन्द्र था। इससे 'जैन ग्रंथावली' में भूल से इन देवचन्द्र को हेमचन्द्र के गुरु के रूप में मान लिया है, यह ठीक नहीं है। हेमचन्द्र के शिष्य का नाम भी देवचन्द्र था। उन्होंने 'चन्द्रलेखा विजय प्रकरण' नामक नाटक लिखा है और उसकी हस्तलिखित प्रति जैसलमेर के

सम्यग्ज्ञाननिधेर्गुणैरनवधेः श्री हेमचन्द्रप्रभो
र्ग्रन्थे व्याकृतकौशलव्यसनिनां कास्मादृशां तादृशाम् ।
व्याख्याम स्म तथापि तं पुनरिदं नाश्चर्यमन्तर्मनस्
तस्याजस्रं स्थितस्य हि वयं व्याख्यामनुव्रमहे ॥

संस्कृत हस्तलिखित प्रतियों की शोध की डॉ० पिटर्सन् की रिपोर्ट नं० १ सन् १८८२-८३, पृ० २३३ में उद्धृत प्रस्तुत ग्रंथ की प्रशस्ति।

२१ करीब छः वर्ष पहले पाटण में पू० मुनि श्री पुण्यविजय जी ने मुझे इस व्याख्या की अत्यन्त सूक्ष्म अक्षरों में लिखित एक सुन्दर प्रति बताई थी। श्री साराभाई नवाब ने 'जैन अनेकार्थ ग्रन्थ संग्रह' में इस कृति को प्रकाशित किया है। पाटण में हेमसारस्वत सत्र के प्रसंग पर आयोजित प्रदर्शनी में उपरोक्त सूक्ष्माक्षरी प्रति रखी गई थी। उसके कर्त्ता लिखते हैं—श्री हेमचन्द्र सूरिशिष्येण वर्धमानगणिना कुमारविहार-प्रशस्तौ काव्येऽस्मिन् पूर्वं षडर्थे कृतेऽपि कौतुकात् षोडशोत्तरं व्याख्यानं चक्रे।

भण्डार में मौजूद है।[२३] इस नाटक के अन्त में लिखा है कि इसकी रचना में शेष भट्टारक ने सहयोग दिया है, परन्तु यह ज्ञात नहीं हुआ है कि शेष भट्टारक कौन है। 'चन्द्रलेखा विजय प्रकरण' की नायिका के रूप में चन्द्रधरी की कल्पना की गई है, परन्तु यह नाटक सपादलक्ष के राजा अर्णोराज की कुमारपाल द्वारा पराजय पर कुमारपाल के वीरत्व की प्रशंसा में लिखा गया है। यह भी सम्भव है कि यह नाटक कुमारपाल की आज्ञा से ही लिखा गया हो, क्योंकि नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि इसकी रचना कुमार विहार में श्री अजितनाथ देव के वसन्तोत्सव के प्रसंग पर कुमारपाल की सभा के परितोषार्थ अभिनय करने के लिए ही की गई है।[२४] अर्णोराज और कुमारपाल का युद्ध कई वर्ष तक चला था परन्तु कुमारपाल की सम्पूर्ण विजय सं० १२०७ अथवा उसके थोड़े समय पहले होनी चाहिए क्योंकि चित्तौड़ में कुमारपाल के सं० १२०७ के शिलालेख में लिखा है कि शाकम्भरी के राजा को हराकर और शालीपुर नामक ग्राम में अपने लश्कर को छोड़कर चित्तौड़ की शोभा देखने के लिए राजा वहाँ आया था। इससे यह स्पष्ट है कि 'चन्द्रलेखा विजय प्रकरण' सं० १२०७ या उसके थोड़े समय बाद में लिखा गया होगा।

इसके अलावा देवचन्द्र की 'मानमुद्राभंजन' नामक एक दूसरी रचना थी, ऐसा उल्लेख अन्य स्थलों पर मिलता है, परन्तु इस कृति का अभी तक पता नहीं लगा है।[२५]

उदयचन्द्र

उदयचन्द्र द्वारा लिखित अभी तक एक भी ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुआ है, परन्तु उनके उपदेशों से कई ग्रन्थ लिखने का उल्लेख मिलता है। वे एक अच्छे विद्वान् थे। 'प्रबन्धचिन्तामणि' कुमारपालप्रबन्धान्तर्गत उदयचन्द्र प्रबन्ध में

---

२३ चन्द्रलेखा विजय प्रकरण के अन्त में—

विद्याम्भोनिधिमन्थमन्दरगिरिः श्री हेमचन्द्रो गुरुः
सन्निध्यैकरतिर्विशेषविधये श्रीशेषभट्टारकः !
यस्य स्तः कविपुङ्गवस्य जयिनः श्री देवचन्द्रस्य सा
कीर्तिस्तस्य जगत्त्रये विजयतात् साद्ग (?) ललीलायिते ॥

—जैसलमेर भण्डार सूचि (गा० ओ० सी०), पृ० ४६

२४ 'कुमारविहारे मूलनायकपार्श्वे जिनवामपार्श्वविस्थितश्रीमद्जितनाथदेवस्य वसन्तोत्सवे कुमारपालपरिषच्चेतःपरितोषायास्य प्रणयनम्।

२५ जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २८०

लिखा है कि एक बार कुमारपाल के समक्ष पं० उदयचन्द्र अपने गुरु हेमाचार्य के 'योगशास्त्र' को पढ़ रहे थे। उसमें पन्द्रह कर्मादान की व्याख्या में 'दन्तकेशनखास्थित्वक्रोम्णां ग्रहणमाकरे' यह श्लोक आया, उस में हेमाचार्य के मूलपाठ को सुधार कर 'रोम्णां' के स्थान पर बारबार 'रोम्णि' पढ़ा। हेमचन्द्र के कारण पूछने पर उदयचन्द्र ने बताया कि प्राणियों के अंग, वादित्र इत्यादि के लिए द्वंद्व समास में एकवचन होता है। इससे हेमाचार्य, राजा और अन्य लोगों ने उनकी प्रशंसा की।[२६]

उदयचन्द्र के उपदेश से देवेन्द्र ने 'सिद्धहेमबृहद्वृत्ति' पर 'कतिचिद्दुर्ग-पदव्याख्या' नामक टीका[२७] और 'उपमितिप्रपंचकथासारोद्धार'[२८] ग्रंथ लिखे और चन्द्रगच्छीय देवेन्द्रसूरि के शिष्य कनकप्रभा ने 'हेमन्यासससार' का उद्धार किया था।[२९] 'हैमबृहद्वृत्ति' पर व्याख्या लिखने वाले देवेन्द्र को डॉ० बुल्हर ने उदयचन्द्र का शिष्य माना है।[३०]

---

२६ प्रबन्ध चिन्तामणि (फा० गु० सभा की आवृत्ति), पृ० १४७

२७ इस टीका की सं० १२७१ में लिखित जेसलमेर के बृहद्ज्ञान कोश की प्रति में से डॉ० बुल्हर ने हेमचन्द्र विषयक निबन्ध में उद्धृत मंगलाचरण :

|| अर्हं || प्रणम्य केवलालोकावलोकितजगत्त्रयम् ।
जिनेशं श्री सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासने ।।
शब्दविद्याविदां वन्द्योदयचन्द्रोपदेशतः ।
न्यासतः कतिचिद्दुर्गपदव्याख्याभिधीयते ।।

— Life of Hemachandracharya
(सिंघी जैन ग्रन्थमाला), Page 81

२८ देखो पाटन भण्डार की पुस्तकों की वर्णनात्मक सूची (गा० ओ० सी०) भाग १ पृ० ५१

२९ भूपालमौलिमाणिक्यमालालालितशासनः ।
दर्शनषट्कनिस्तन्द्रो हेमचन्द्रमुनीश्वरः ।।
तेषामुदयचन्द्रोऽस्ति शिष्यः सख्यावतां वरः ।
यावज्जीवमभूद् यस्य व्याख्या ज्ञानामृतप्रपा ।।
तस्योपदेशात् देवेन्द्रसूरिशिष्यलवो व्यधात् ।
न्याससारसमुद्धारं मनीषी कनकप्रभः ।।

—हेमशब्दानुशासन बृ० न्या० प्रान्त (नलविलास, प्रस्तावना पृ० २४)

३० Life of Hemachandracharya (सिंघी जैन ग्रंथमाला), पृ० ८१

यशश्चन्द्र

यशश्चन्द्र लिखित अभी तक कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं है,[३१] परन्तु प्रबन्धों में उनके विषय में अनेक जगह उल्लेख मिलता है। उससे प्रतीत होता है कि वे हेमचन्द्रसूरि के साथ रहते थे। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में दो स्थान पर यशश्चन्द्रगणि के विषय में उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर लिखा है कि एक बार देवपूजन के समय हेमचन्द्र कुमारपाल के महल में गये उस समय यशश्चन्द्र उनके साथ थे।[३२] दूसरे स्थान पर लिखा है आंबड मेहता ने भड़ोच में अपने पिता के कल्याणार्थ शकुनिविहार बँधवाया था, उसके ऊपर ध्वजा चढ़ाने के प्रसंग पर नृत्य करते समय मिथ्यात्वियों की देवी के दोष में आ जाने के कारण अन्तिम स्थिति में पहुँच गये थे। उस समय उस कष्ट का निवारण करने के लिए हेमचन्द्र और यशश्चन्द्र पाटन से भड़ोच आये थे और दोष का निवारण कर वापिस लौट गये थे।[३३] इसके अतिरिक्त प्रभाचन्द्रसूरि के 'प्रभावक चरित'[३४] में और जिनमण्डनगणि के 'कुमारपाल प्रबन्ध'[३५] में भी यशश्चन्द्र का नामोल्लेख मिलता है।

८—बालचन्द्र

बालचन्द्र का गुरुद्रोह और उसके परिणाम स्वरूप रामचन्द्र की अकाल मृत्यु के विषय में पहले कहा गया है। इसके बारे में विशेष लिखते हुए 'प्रबंध-कोश' के रचयिता लिखते हैं कि रामचन्द्र की मृत्यु के बाद, 'यह अपने ही गोत्र की हत्या कराने वाला है' ऐसा कह कर ब्राह्मणों ने बालचन्द्र को राजा अजयपाल के मन से उतार दिया था। इससे लज्जित होकर बालचन्द्र मालवा की तरफ चले गये और वहीं उनकी मृत्यु हुई।[३६]

'स्नातस्या' नामक प्रसिद्ध स्तुति की रचना उनके द्वारा हुई बतलाते हैं।

---

३१ मुद्रित कुमुद प्रकरण के कर्त्ता श्रावक यशश्चन्द्र को श्री कन्हैयालाल मुंशी (देखो Gujrat and Its Literature, P. 47) और श्री रामलाल मोदी (देखो 'बुद्धिप्रकाश' जनवरी १९३० में उनका लेख—पाटन के ग्रंथकार) ने हेमचन्द्र का शिष्य माना है, यह ठीक नहीं है।

३२ प्रबन्ध चिन्तामणि (फा० गु० सभा की आवृत्ति), पृ० १३३

३३ वही, पृ० १४३-१४४

३४ प्रभावक चरित, हेमाचार्य प्रबन्ध, श्लोक ७३७

३५ कुमारपाल प्रबन्ध, पृ० १८८

३६ प्रबन्धकोश (सिंघी जैन ग्रंथमाला), पृ० ९८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

कोशल राजा की कनकमाला नामक एक कन्या विवाह योग्य थी। उन्होंने अपराजित के साथ उसका विवाह कर दिया। इस प्रकार और कुछ दिन बीते। देश लौट जाने की आज्ञा नहीं मिलने के कारण अपराजित एक रात 'हमारी यात्रा निर्विघ्न हो, बोलकर बिना किसी से कुछ कहे मन्त्रीपुत्र सहित राज प्रासाद से निकल गए। कुछ दूर गए भी नहीं कि काली मन्दिर के निकट उन्होंने एक स्त्री के रोने की आवाज सुनी। वह रोती हुयी कह रही थी, 'हाय! आज पृथ्वी वीरशून्य हो गयी है।'

दया के सागर अपराजित स्त्री-क्रन्दन सुनकर शब्द भेदी तीर की भाँति उस शब्द का अनुसरण करते हुए वहाँ आ पहुँचे। वहाँ जलते हुए अग्नि कुण्ड के सम्मुख रोती हुयी एक रमणी और हाथ में नग्न तलवार लिए एक पुरुष को देखा। कसाई के सम्मुख बकरी जिस प्रकार आर्तनाद करती है उसी प्रकार उन्हें देखकर वह आर्तनाद करती हुयी बोली, 'संसार में यदि कोई वीर है तो इस नीच विद्याधर के हाथों से मेरी रक्षा करें।'

'रे नीच, युद्ध के लिए तैयार हो जा तेरा जितना साहस और बल है वह इस अबला पर ही है'—ऐसा कहते हुए कुमार ने अपनी तलवार निकाली। उस विद्याधर ने भी तलवार निकालकर राजकुमार पर आक्रमण किया। बहुत देर तक युद्ध होता रहा कारण दोनों ही युद्ध विद्या में निपुण थे। एतदर्थ एक दूसरे के आघात से अपनी रक्षा करते हुए वे युद्ध कर रहे थे। अस्त्र युद्ध के पश्चात् प्रारम्भ हुआ मुष्ठि युद्ध। किन्तु मुष्ठि युद्ध में भी जब वह विद्याधर अपराजित कुमार को पराजित नहीं कर सका तब मंत्र बल से उन्हें नागपाश में बाँध डाला। किन्तु मदमस्त हस्ती जिस प्रकार आलान स्तम्भ के बन्धन को छिन्न कर डालता है, उसी प्रकार क्रुद्ध अपराजित ने उस नागपाश के बन्धन को छिन्न कर डाला। असुरकुमार की तरह क्रुद्ध होकर तब वह विद्याधर विद्या बल से विभिन्न अस्त्रों द्वारा उनपर आक्रमण करने लगा। पूर्व जन्म की सुकृति और शारीरिक बल के कारण उनपर उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा।

तभी पूर्वांचल में सूर्य उदित हुआ। ठीक उसी समय अपराजित ने खड्ग द्वारा विद्याधर के मस्तक पर ऐसा आघात किया कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। अपराजित के इस शौर्य पर वह सुन्दरी भी होश खोकर उनके प्रति अनुरागवती हो गयी।

तब अपराजित ने उपचार करके उस विद्याधर की संज्ञा लौटायी और बोले, 'यदि युद्ध करने में समर्थ हो तो पुनः युद्ध करो।' तब वह विद्याधर बोला, 'नहीं अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं आप द्वारा पूर्णतः पराजित कर दिया गया हूँ। आपने इस नारी-हत्या और नरक गमन से मेरी रक्षा की है। मेरे उत्तरीय में एक मणि और कुछ जड़ी रखी हुयी है। मणि को जल में डुबोकर और उस जल में उस जड़ी को घिसकर मेरे क्षत स्थानों पर लगा दे। इससे मैं पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँगा।'

विद्याधर ने जैसा कहा अपराजित ने वैसा ही किया। पूर्ण स्वस्थ होने पर उन्होंने उसके विषय में कुछ प्रश्न किए। प्रत्युत्तर में विद्याधर ने कहा—

'इसका नाम है रत्नमाला। रथनुपुर के राजा अमृतसेन की यह कन्या है। शायद उसे एक नैमित्तिक ने बताया था कि राजा हरिचन्दी के पुत्र और चारित्र रूप रत्न सागर अपराजित इसके पति होंगे। तभी से वह उसकी अनुरागिनी हो गयी है और अन्य को मन में स्थान ही नहीं देती। एक दिन संयोगवश मैंने उसे देखा और विवाह का प्रस्ताव रखा। प्रत्युत्तर में उसने कहा, 'या तो अपराजित मेरा पाणिग्रहण करेगा नहीं तो अग्नि में देह विसर्जित कर दूँगी। इसके अतिरिक्त तीसरा कोई विकल्प नहीं है।' यह सुनकर मैं क्रुद्ध हो गया और वहाँ से लौटकर विद्या की दुःसाध्य साधना की। साधना के सिद्ध हो जाने पर वहाँ से लौटा और इससे पुनः विवाह का प्रस्ताव रखा। किन्तु जब वह सम्मत नहीं हुयी तो विद्या-बल पर इसका अपहरण कर इसे यहाँ ले आया। कामी क्या नहीं करता? इसकी प्रतिज्ञा ही पूर्ण हो यही सोचकर अग्निकुण्ड प्रज्वलित कर उसे अग्नि में फेंकने ही जा रहा था कि आपने इसे बचा लिया और मेरी नरक गमन से रक्षा की। आप हम दोनों के उपकारक हैं। मेरा नाम सुरकान्त है और मेरे पिता का नाम श्रीषेण है। हे पराक्रमी, मैं आपका परिचय पाना चाहता हूँ।'

तब मंत्रीपुत्र ने अपराजित का नाम और कुल—वंश परिचय दिया। राजकुमार का परिचय पाकर रत्नमाला आनन्दित हो उठी। रत्नमाला को खोजते हुए उसी समय उसके माता-पिता कीर्तिमती और अमृत सेन वहाँ पहुँच

गए। उनके पूछने पर मन्त्रीपुत्र ने सारा वृत्तान्त उन्हें स्पष्टतया सुना दिया। सुनकर वे आनन्दित हुए और बोले—'रत्नमाला का रक्षक ही उसका पति होना और कोई नहीं।' ऐसा कहकर अपराजित के साथ वहीं उसका विवाह कर दिया। रत्नमाला और अपराजित के कहने से रत्नमाला के माता-पिता ने सुरकान्त को क्षमा कर दिया। सुरकान्त ने मणि और जड़ी अपराजित को दी और मन्त्रीपुत्र को रूप परिवर्तन की गुटिका दी। 'हमारे अपने देश लौट जाने पर रत्नमाला को हमारे घर भेज दें' ऐसा कहकर अपराजित ने अमृतसेन से विदा ली। अपराजित के विषय में सोचते हुए अमृत सेन अपनी पत्नी और कन्या सहित स्व नगर को लौट गए और सुरकान्त भी अपने निवास स्थान पर चला गया।

अपराजित और मन्त्रीपुत्र उस स्थान का परित्याग कर आगे बढ़ते हुए एक महा अरण्य में प्रविष्ट हुए। उस अरण्य में कुछ दूर अग्रसर होने के पश्चात तृषातुर अपराजित एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठ गए और मन्त्रीपुत्र को जल की खोज में भेजा। बहुत दूर जाने पर उन्हें जल मिला। जल लेकर जब वे लौटे तो देखा वहाँ राजकुमार अपराजित नहीं थे। वे मन ही मन सोचने लगे—क्या यह वह स्थान नहीं है? कहीं मैं भूल से दूसरे वृक्ष के नीचे तो नहीं आ गया? या तीव्र तृषा के कारण राजकुमार ही जल के सन्धान में अन्यत्र चले गए? ऐसा सोचकर मन्त्रीपुत्र प्रत्येक वृक्ष के नीचे जा-जा कर उन्हें खोजने लगे किन्तु जब उन्हें कहीं भी नहीं पाया तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कुछ देर पश्चात जब उन्हें होश आया तो विलाप करते हुए बोलने लगे—'कुमार, तुम कहाँ हो? मुझे दिखते क्यों नहीं? ऐसा तो कोई मनुष्य ही नहीं है जो तुम्हें उठाकर ले जा सके या तुम्हारा कुछ अनिष्ट कर सके। तुम्हारे नहीं मिलने का कोई अशुभ कारण ही समझ में नहीं आ रहा है।'

इस प्रकार बार-बार विलाप करते हुए ग्राम नगरों में घूमते हुए मन्त्री पुत्र नन्दीपुर नामक नगर के निकट पहुँचे। क्लान्त होकर जिस समय वे नगर के बाहर एक उद्यान में विश्राम कर रहे थे तो दो सामान्य स्थितिवाले विद्याधर उनके निकट आए और बोले, 'महा वैभवपूर्ण एवं शक्तिशाली विद्याधरपति भुवनभानु निकटस्थ अरण्य में अपने विद्याबल से एक प्रासाद का निर्माण कर अब सपरिवार रह रहे हैं। उनके कमलिनी और कुमुदिनी नाम की दो कन्याएँ हैं। एक नैमित्तिक ने उनसे कहा है कि तुम्हारे मित्र अपराजित उनके पति होंगे। प्रभु के आदेश से इसीलिए उन्हें लाने के लिए

हम वन में गए और आप दोनों को ही वहाँ देखा। तदुपरान्त जब आप जल लाने चले गए हम आपके मित्र को उठाकर ले आए और अपने स्वामी भुवनभानु के सन्मुख उन्हें उपस्थित किया। उन्हें देखते ही भुवनभानु सिंहासन से उठकर उन्हें ससम्मान अपने सिंहासन पर बैठाया। तदुपरान्त विद्याधरपति ने उनके गुणों की प्रशंसा कर अपनी कन्याओं के पाणिग्रहण की प्रार्थना की। आप से विच्छेद हो जाने के कारण वे भी व्याकुल थे अतः उनकी बात का कोई जवाब न देकर केवल आपके विषय में सोचते हुए मुनियों की तरह मौन धारण किये रहे। तब विद्याधरपति ने आपको भी लाने के लिए हमें आदेश दिया। आपको खोजते-खोजते यहाँ आकर आप से मिल सके। हे महाभाग, अतः अब उठिए और शीघ्र हमारे साथ चलिए। जब तक आप नहीं जाएँगे राजकन्याओं का विवाह स्थगित हो गया है।'

यह सुनकर मंत्रीपुत्र के आनंद की सीमा नहीं रही। मानों आनन्द ही मूर्तिमन्त हो गया हो इस भाँति उनके साथ जाकर वे राजपुत्र के निकट पहुँचे। फिर एक शुभ दिन भुवनभानु की कन्याओं के साथ राजपुत्र का विवाह हो गया। वहाँ कुछ दिन रहकर पूर्व की ही भाँति पुनः वे निकल पड़े और चलते हुए श्री मंदिर नामक नगर में जा पहुंचे। मनोरम नगरी को देखकर कुछ दिन वहीं रहना स्थिर किया। उनकी दैनन्दिन आवश्यकताएँ सुरकान्त प्रदत्त मणि के द्वारा पूर्ण होने लगी।

एक दिन नगर में हाहाकार सुनकर और सैनिकों को अस्त्र धारण किए इधर-उधर जाते देखकर अपराजित ने मंत्रीपुत्र को इसका कारण जानने को कहा। मन्त्रीपुत्र ने नागरिकों द्वारा यथा तथ्य ज्ञात कर कहा—'यहाँ के राजा का नाम है सुप्रभ। किसी ने छलपूर्वक निकट जाकर छूरे से उनको आहत कर दिया है। उनके कोई सन्तान नहीं है जो कि राज्याधिकारी बन सके। अतः लोग भय से घबड़ा कर कोलाहल कर रहे हैं और सैनिकगण अस्त्र धारण कर नगर में घूम रहे हैं।

किसी ने उन्हें छूरे से आहत कर दिया है सुनकर राजपुत्र ने करुणार्द्र होकर माथा झुका लिया। उधर राजा की अवस्था अधिक खराब होने लगी। प्रधान गणिका कामलता को उपचार से आरोग्य का कोई लक्षण ही दीखायी नहीं पड़ा। तब कामलता मंत्रियों से बोली—

'इस नगर में कुछ दिन से एक विदेशी आकर रहे हैं। वे धार्मिक, सत्यवादी, महान और आकृति से देव स्वरूप हैं। यद्यपि वे अर्थोपार्जन का कोई

भी प्रयास नहीं करते फिर भी वे अच्छी तरह अपना जीवन चलाते हैं। अतः लगता है उनके पास कोई प्रभावशाली मणि है। आप उनके निकट जाएँ।'

मन्त्रीगण अपराजित के निकट पहुँचे और उसे राजा के सम्मुख उपस्थित किया। उन्हें देखने मात्र से राजा को स्वस्ति बोध हुआ। अपराजित ने राजा का क्षत स्थान देखा और करुणार्द्र होकर अपने मित्र से मणि और मूल लेकर मणि धुला जल राजा को दिया और उसी जल में उस जड़ी को घिसकर क्षत स्थान पर लेपन कर दिया। राजा तत्क्षण स्वस्थ हो उठे और उससे पूछा, 'हे करुण-सागर, आप कहाँ से आए हैं?'

तब मंत्रीपुत्र ने अपराजित का परिचय दिया। यह सुनकर सुप्रभ बोल उठे, 'अरे, तुम ही मेरे हरि नन्दी के पुत्र हो? धिक्कार है मुझे मैं इतने दिनों तक न तुम्हें पहचान सका, न तुम्हारा सत्कार किया। मेरा यह क्षत मेरे इस अपराध के दण्ड स्वरूप ही हुआ था।'

तत्पश्चात् सुप्रभ ने अपनी रम्भा-सी सुन्दरी कन्या रम्भा के साथ अपराजित का विवाह कर दिया। अपराजित कुछ समय तक वहाँ रुककर रम्भा के साथ यौवन सुख का भोग करने लगे। तदुपरान्त पूर्व की ही भाँति उस स्थान का परित्याग कर मित्र सहित अन्यत्र चले गए।

भ्रमण करते हुए वे कुन्दपुर नगर पहुँचे और वहाँ दिव्य कमल पर आसीन एक केवली मुनि को देखा। वे वहाँ गए, मुनि को तीन प्रदक्षिणा दी और वन्दन कर उनके सम्मुख बैठ गए एवं शान्त भाव से देशना सुनी। वह देशना कानों के लिए अमृत तुल्य थी। देशना शेष होने पर पुनः उन्होंने मुनि को वन्दना की। अपराजित ने मुनि से पूछा—'भगवन, मैं भव्य हूँ या अभव्य?'

केवली भगवन ने उत्तर दिया, 'तुम भव्य हो? पाँचवे भव में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के तुम २२वें तीर्थंकर बनोगे और तुम्हारा यह मित्र तुम्हारा गणधर होगा।'

यह सुनकर वे आनन्दित हुए और कुछ दिन वहीं रहकर केवली भगवन की सेवा की। फिर जब केवली भगवन वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गए तब वे भी उस स्थान का परित्याग कर चैत्य वन्दना करते हुए भ्रमण करने लगे।

उन दिनों जनानन्दपुर में जितशत्रु नामक एक राजा राज्य करते थे। उनकी शील सम्पन्ना रानी का नाम था धारिणी। रत्नवती का जीव स्वर्ग से

च्युत होकर उसके गर्भ में उत्पन्न हुआ। समय पूर्ण होने पर रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया प्रीतिमती। क्रमशः वह बड़ी होने लगी। उम्र के साथ-साथ उसने समस्त कलाएँ अधिगत कर लीं और कामदेव को भी जीवन देने वाले यौवन को प्राप्त हुयी, वह कला में इतनी प्रवीण हो गई थी कि अच्छे-अच्छे कलाविद को भी उसने पराजित कर दिया था। अतः वह किसी के भी प्रति अनुरागवती नहीं हो सकी। राजा मन ही मन चिन्ता करने लगे कि यदि ऐसी विदुषी कन्या को जिस-तिस के हाथ सौंप दिया गया तो वह निश्चिय ही मृत्यु वरण करेगी।

ऐसा सोचकर राजा ने एक दिन उसे एकान्त में पूछा, 'तुम्हारा पति कौन बनेगा क्या इसके विषय में तुमने कुछ सोचा है?' प्रीतिमती ने उत्तर दिया, 'जो कला में मुझे पराजित करेगा वही मेरा पति होगा।' राजा ने यह बात स्वीकार कर ली।

धीरे-धीरे प्रीतिमती की यह प्रतिज्ञा चारों ओर फैल गयी। उसके रूप के कारण राजा और राजपुत्र उसे प्राप्त करने की इच्छा से कला का अभ्यास करने लगे। यथा समय राजा जितशत्रु ने नगर से बाहर एक विराट मण्डप का निर्माण करवाया और प्रीतिमती के स्वयंवर की घोषणा करवायी। पृथ्वी के राजा और विद्याधर राजगण भी अपने-अपने पुत्रों को लेकर उस स्वयंवर में उपस्थित होने लगे। पुत्रवियोग में दुःखी एकमात्र हरिनन्दी वहाँ नहीं आए। देवगण जिस प्रकार विमान में अवस्थित रहते हैं उसी प्रकार वे राजा भी उनके निर्मित मंच पर उपविष्ट होने लगे। अपराजित और मंत्रीपुत्र भी इधर-उधर घूमते हुए वहाँ उपस्थित हो गए। अपराजित ने विमलबोध से कहा, 'हमलोग यहाँ ठीक समय पर पहुँचे हैं। यहाँ हम कलाविदो की कला पारदर्शिता भी देख सकेंगे और राजकन्या को भी देख सकेंगे। किन्तु हमारा परिचय किसी को नहीं मिले।'

सुरकान्त द्वारा दी हुयी गुटिका के प्रभाव से वे और विमलबोध विनोद के लिए देवों की तरह अपनी आकृति परिवर्तित कर साधारण वेश में सभा में उपस्थित हुए और दर्शकों के लिए निर्दिष्ट स्थान पर जाकर बैठ गए।

तदुपरान्त द्वितीय लक्ष्मी की भाँति प्रीतिमती बहुमूल्य वस्त्रालंकार धारण कर सखियों से परिवृत होकर मृत्युलोक की देवी की तरह उस सभा में आकर उपस्थित हुयी। चामरधारिणियाँ उस पर चामर डुला रही थी और द्वार रक्षक एवं अनुचरगण सम्मुख आती जनता को एक ओर हटा रहे थे।

प्रीतिमती की एक सखी मालती सभा में उपस्थित राजाओं की ओर अंगुली निर्देश करती हुयी कहने लगी, 'ये सब भूचारी और आकाशचारी राजागण स्वयं को कला में प्रवीण मानकर इस सभा में उपस्थित हुए हैं। ये देखो ये हैं पूर्व दिशा के भूषण रूप कदम्ब देश के राजा पृथ्वी प्रसिद्ध वीर भुवनचन्द्र। और ये हैं सरल स्वभावी रूप में मीनकेतु-से दक्षिण दिशा के तिलक रूप राजा समरकेतु। ये हैं उत्तर दिशा के राजा कुबेर जिनकी कीर्ति-लता हर दिशा में विस्तृत है। ये तो शत्रुओं की पत्नियों द्वारा भी प्रशंसित हैं। ये हैं राजा सोमप्रभ जिनका यश चन्द्र को भी अतिक्रम कर गया है। इनके अतिरिक्त धवल, शूर, भीम आदि राजागण भी यहाँ आकर उपस्थित हुए हैं। ये विद्याधरपति शक्तिशाली राजा मणिचूड़ हैं। वे रत्नचूड़ और वे वीर्यवान मणिप्रभ हैं। और वे सुमन, सूर, सोम आदि खेचर राजागण हैं। इन्हें देखो और इनकी कला की परीक्षा लो। ये सभी कलाविद् है।'

ऐसा सुनकर प्रीतिमती ने जिनकी ओर भी देखा, लगा मानों उससे उपदिष्ट होकर कामदेव ने उसे ही बाण-बिद्ध कर दिया। बसन्त के आगमन से कोकिला का कण्ठ जिस भाँति मधुमय हो जाता है वैसे ही मधुर कण्ठ से प्रीतिमती ने सरस्वती की तरह पूर्व पक्ष ग्रहण कर वाद-विवाद प्रारम्भ किया। किन्तु उसके प्रश्नों को सुनकर भूचारी और आकाशचारी समस्त राजागण हतबुद्धि-से हो गए। उन्हें ऐसा देखकर लगा मानो किसी ने उनके कण्ठ को दबा कर पकड़ रखा है। फलतः वे उनका प्रत्युत्तर नहीं दे पाए।

सभी राजा एवं राजपुत्र लज्जित होकर परस्पर कहने लगे, 'लगता है स्त्री होने के कारण वागदेवी ने उसका पक्ष लिया है। तभी हम कभी पराजित नहीं होने वाले भी आज पराजित हो गए हैं। उन सब में आँख उठाकर देखने की भी शक्ति नहीं रही।

जितशत्रु स्वभावतः ही चिन्तित हो गए। सोचने लगे—क्या विधाता उसका निर्माण कर इतना क्लान्त हो गया था कि उसके अनुरूप वर की रचना नहीं कर सका। यहाँ इतने राजन्य उपस्थित हैं उनमें ही जब मेरी कन्या के योग्य वर नहीं मिला तो साधारण मनुष्यों में तो पाना ही दुष्कर है। अतः अब मैं क्या करूँ।

राजा को चिन्तित देखकर मंत्री बोले, 'हे राजन्, आप चिन्ता न करें! विद्वानों के मध्य जिस प्रकार महान् विद्वान होते हैं उसी प्रकार कलाविदों के मध्य भी महान् कलाविद् होते हैं। कारण पृथ्वी बहुरत्ना अर्थात् रत्नों से भरी

पड़ी है। आप घोषणा कराएँ—राजा, राजपुत्र व साधारण मनुष्य जो कोई भी राजकन्या को पराजित कर सकेगा, वही राजकन्या को प्राप्त करेगा।'

मन्त्री का वह परामर्श राजा को बहुत अच्छा लगा। उन्होंने तत्क्षण यह घोषणा करवायी। इस घोषणा को सुनकर अपराजित मन ही मन सोचने लगे—यद्यपि स्त्री से वाद-विवाद में जीतना पुरुषों के लिए गौरव की बात नहीं है किन्तु उससे वाद-विवाद नहीं करना भी सभी पुरुषों के लिए गौरव-हानि होगी। अतः गौरव और अगौरव के प्रश्न को बाद देकर उसे विवाद में पराजित करना होगा।

ऐसा विचार कर अपराजित प्रीतिमती के सम्मुख जाकर खड़े हो गए। प्रीतिमती ने जिस समय उन्हें देखा उस समय वे मेघाच्छादित सूर्य की भाँति अत्यन्त साधारण वेश और आकृति में अवस्थित थे। फिर भी पूर्व जन्म के सम्बन्ध के कारण प्रीतिमती उनके प्रति आकृष्ट हो गयी। प्रीतिमती ने पूर्व की ही भाँति पूर्व पक्ष वर्णन किया और अपराजित ने शीघ्र ही उसका प्रत्युत्तर देकर उसे निरुत्तर कर दिया। पराजित होकर प्रीतिमती ने उनके गले में वरमाल्य डाल दी। यह देखकर भूचारी और आकाशचारी सभी राजागण ईर्ष्यान्वित होकर अपराजित पर क्रुद्ध हो उठे। कहने लगे—'कौन है वह? वाक्यवीर होने पर भी तुला की भाँति हल्का भिक्षुक है। क्या हमारे रहते हुए वह राज्यकन्या से विवाह करेगा?' ऐसा कहकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर एवं हस्ती और अश्ववाहिनी लेकर अपराजित पर आक्रमण कर दिया। अपराजित भी उसी क्षण एक हस्ती की पीठ पर चढ़ कर आरोही की हत्या कर डाली और उसमें रखे अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। मुहूर्त भर में एक रथी की हत्या कर वे रथ पर चढ़ गए। कभी धरती पर, कभी हाथी पर तो कभी रथ पर चढ़कर वे युद्ध करने लगे। ऐसा लग रहा था मानो वे एक होकर भी अनेक रूप में युद्ध कर रहे हैं। शत्रु सेना में मानो वज्रपात हो गया हो वे इस भाँति उनका वध करने लगे।

पहले तो हम एक रमणी द्वारा शास्त्र युद्ध में पराजित हुए और अब शस्त्र युद्ध में भिखारी द्वारा पराजित हो रहे हैं। परस्पर ऐसा कहते हुए उन राजाओं ने एक साथ अपराजित पर आक्रमण कर दिया। इस बार अपराजित ज्योंही सोमप्रभ के हाथी पर चढ़े, सोमप्रभ ने उनके लक्षण और तिलक को देखकर उन्हें पहचान लिया। उन्होंने अस्त्र फेंक कर अपराजित को आलिंगन में लेते हुए कहा, 'सौभाग्यवश मैं तुम्हें पहचान गया हूँ। असीम शक्तिशाली तुम मेरे भानजे हो।' [क्रमशः

॥ युवावर्ग क्रान्ति का वाहक ॥

युवावस्था जीवन का बसन्त है। जैसे बसन्त में सारा वन और बाग-बगीचे खिल उठते हैं उसी प्रकार युवावस्था में शरीर के अंग-प्रत्यंग खिल उठते हैं। उनमें उत्साह, उमंग और साहस का ज्वार उमड़ पड़ता है। वे पुष्ट और सौष्ठवमय हो उठते हैं। इस अवस्था में बड़े-बड़े दुष्कर कार्य किये जा सकते हैं। जितने भी क्रान्तिकारी हुए हैं वे युवावस्था में ही हुए हैं। समाज और राष्ट्र के निर्माण में भारत में ही नहीं, विश्व के सभी देशों में युवावर्ग की ही प्रमुख भूमिका रही है।

पर आज युवावर्ग में वह बसन्त की बहार देखने को नहीं मिलती। इनके चेहरे निराशा, कुण्ठा और हीन भावना से ग्रस्त लगते हैं। उनके अंग-प्रत्यंगों में वह बांकापन नहीं, तेज नहीं, जो किसी निर्माण कार्य में निखार लाता हो। उनकी प्रवृत्ति मोटे तौर से बसन्त की न होकर पतझड़ की है। वे दिशाहीन और लक्ष्यहीन हैं।

हमें युवावर्ग की इस परिस्थिति और मानसिकता को बदलना है।

कठिनाई यह है कि हमने धर्म को कटघरे में कैद कर लिया है। हमारी करनी और कथनी में अन्तर दिखाई देता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम सम्प्रदाय से ऊपर उठकर धर्म के स्वरूप अहिंसा, संयम और तप को प्रमुखता दें। इससे युवावर्ग सम्पर्क में आयेगा तो निश्चित रूप से उसके जीवन में रूपान्तर आयेगा।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

जिलवाणी, सितम्बर १९९१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जैन जर्नल ॥ जुलाई १९९३

इस अंक में है 'Sacred Literature of the Jains' (Albrecht Friedrich Weber), 'Dr. Tessitori's Three Harappan Seals from Bikaner : An Appraisal' (K. S. Shukla), 'Trends of Jainism in Tamralipta' (Korak K. Choudhuri and Saumendra Chakravarty), 'Intensity of Light' (Muni Nandighosh Vijay), 'Jaina Convention at Pittsburg—A Report' (Sushil Jain),

तीर्थंकर वाणी ॥ प्रथम वर्ष प्रथम अंक

इस अंक में है 'अहिंसा धर्म के प्रतीक दशलक्षण धर्म' (पं० बाबूलाल जैन), 'वर्तमान से कहाँ तक जुड़े 'दशधर्म' (डॉ० नीलम जैन)।

समता ॥ प्रथम वर्ष प्रथम अंक

इस अंक में है 'समता समाज क्या और क्यों ?' (आचार्य श्री नानेश), 'समता कैसे आये' (रामसुख दासजी), 'जीवन के समग्र दर्शन के रूप में आचार्य नानेश का समता सिद्धान्त' (शान्तिचन्द्र मेहता), 'आचारांग के सन्दर्भ में समता' (डॉ० उदयचन्द्र जैन), 'समता का दर्शन' (डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया), 'भारतीय संविधान में समता' (प्रो० रतनलाल जैन), 'सामाजिक जीवन एवं समता दृष्टि' (चांदमल कर्णावट), 'जीवन में समता का महत्व' (डॉ० हुक्मचन्द जैन), 'सामाजिक जीवन और समता' (जसकरण डागा), 'कर्मयोग और समता दर्शन' (डॉ० आदर्श सक्सेना), 'भारतीय राजनीति में समता' (सुनीता गुप्ता), 'आचार्य श्री नानेश एवं समता दर्शन' (प्रो० सतीश कुमार मेहता)।

वर्द्धमान महावीर

(रंगीन चित्रों सहित)

लेखक

गणेश ललवानी

हिन्दी रूपान्तर
राजकुमारी बेगानी

चित्रांकन
पुष्पा बेद

मूल्य
साठ रुपये
(डाक व्यय स्वतन्त्र)

आपकी पुस्तक बहुत पसन्द आई। संक्षिप्त और सरल, भगवान महावीर पर ऐसे सामान्य साहित्य के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

—श्री नीरज जैन, सतना
म० प्र०

महावीर जीवन की जो शैली आप द्वारा लिखी गई है वह बेहद सुन्दर है...

—श्री मानकमल लोढ़ा
दिमापुर, नागालैण्ड

उपाख्यान के माध्यम से लेखक ने महावीर के जिस जीवन-चरित्र की रचना की है उसमें तो जैसे एक असाधारण जादू का ही प्रयोग किया है। अलौकिक को वास्तव के धरातल पर उतारा है।—देश

जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3856

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVII No. 7 TITTHAYARA November 1993
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77